समकालीन कविता के विविध रंग 'अरे ओ वसंत' के संग

(मीनू मदान के कविता संग्रह 'अरे ओ वसंत' की समीक्षा)

- प्रशांत जैन

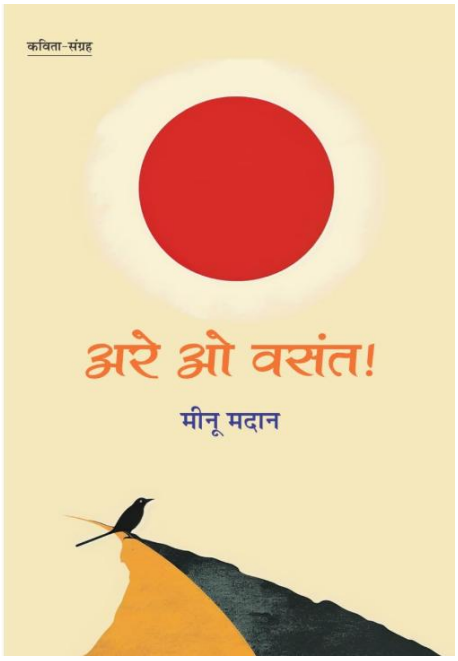

आज के इस असामान्य सामाजिक एवं राजनीतिक माहौल में कविता को निराशा एवं अवसाद की वाहक मात्र बन जाने से बचाए रखना और उसमें आशा के कुछ बीज बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो गया है। ऐसे कठिन समय में 'अरे ओ वसंत' कविता संग्रह नई उम्मीद लेकर आया है। निर्मल प्रकृति को प्रतिमान बनाकर, उससे जुड़कर, उसमें रमकर, जीवन में कुछ रंग भर पाने, उसे कुछ अर्थ प्रदान कर पाने की आशा एवं आश्वस्ति मीनू मदान के इस कविता संग्रह में दिखाई देती है। 'अरे ओ वसंत' कवि की जीवन के प्रति आस्था एवं जिजीविषा का उत्कृष्ट दस्तावेज़ है। यह उत्कृष्टता आकर्षक एवं अर्थपूर्ण आवरण पृष्ठ पर भी उतनी ही शिद्दत से दिखाई देती है, जो अपने आप में किसी चित्र-कविता से कम नहीं। वासंती रंग की पृष्ठभूमि में उदीयमान रक्ताभ सूर्य इस चित्र के केंद्र में है। एक शिला-खंड और उस पर बैठा पक्षी प्रसिद्ध चित्रकार जगदीश स्वामीनाथन की चित्र-शृंखला 'चिड़िया और चट्टान' की याद दिलाते हैं। अन्तर सिर्फ़ यह है कि स्वामीनाथन की चट्टान भारहीन है और अक्सर गुरुत्वाकर्षण के नियम को भंग करती हुई चित्रित की गई है, जबकि इस आवरण चित्र में चट्टान, जिसका एक पृष्ठ काला और दूसरा वासंती शेड में है, पृथ्वी के साथ आबद्ध है, ठीक संग्रह की कविताओं की तरह जो कवि की कल्पना की उड़ानों के बावजूद जीवन की स्याह-सफ़ेद सच्चाइयों के साथ ज़मीन से जुड़ी हुई हैं।

मीनू मदान का यह कविता संग्रह प्रकृति को समर्पित है। समर्पण वाक्य में कवयित्री ने प्रकृति को 'माँ' कहा है। यह समर्पण मात्र भावनात्मक नहीं बल्कि तर्कपूर्ण भी है। संग्रह की अनेक कविताएँ प्रकृति से प्रेरित हैं या प्रकृति को संबोधित हैं। प्रकृति के विविध पक्षों से गहरा लगाव इन कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। नदी, पहाड़ और जंगल हों, या बदलती ऋतुएँ और मौसम, प्रकृति के हर रूप

और रंग का प्रतिबिंब कवयित्री अपने जीवन में देखती है और अस्तित्व के स्तर पर उसके साथ एकाकार होती है। 'प्रकृति' कविता में वह कहती है –

तुम छलना नहीं हो, ओ प्रकृति !
तुम्हारी गोद मादक है
आलिंगन मधुर है
और स्पर्श रोमांचक है

इस स्वार्थी और छलिया संसार में कवयित्री के अनुसार एक प्रकृति ही है जो निर्मल और निष्कलुष है। वही उसकी सर्वस्व है और वही शरण्य है। यह जुड़ाव मात्र काल्पनिक या शाब्दिक नहीं बल्कि शत-प्रतिशत वास्तविक है। इसे मीनू मदान के जीवन और चर्या में देखा जा सकता है। मुंबई जैसे महानगर में अपने आवास के लिए उन्होंने प्रकृति की गोद ही चुनी है। संयोग से नवी मुंबई के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ कॉलोनी के एक ओर शहर की चकाचौंध है और दूसरी ओर कुछ ही दूर सह्याद्रि पर्वत के जंगलों का प्रवेश द्वार। ऐसा ही एक द्वार उनके घर से कुछ ही कदम पर है। जाहिर है इंसानों की तरह पेड़-पौधे भी उनके समाज में शामिल हैं। उनके जीवन में शहर का कोलाहल भी है और जंगल की नीरवता भी। यही उनकी कविता की भी विशिष्टता है। उनके भावजगत में मनुष्य और प्रकृति एक साथ विचरण करते दिखाई देते हैं। अलग-अलग नहीं बल्कि सांगीतिक समरसता के साथ। यह सामरस्य हो भी क्यों नहीं। आख़िर मनुष्य और प्रकृति परस्पर पूरक ही तो हैं। संग्रह की पहली कविता 'अरे ओ वसंत' में कवयित्री वसंत के स्वागत में अपना सर्वस्व समर्पित कर, उसके साथ एकरूप हो, उसके आनंद-यज्ञ में समिधा बन, सुगंध बन पूरे ब्रह्माण्ड में फैल जाना चाहती है। समष्टि के लिए आत्मत्याग का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है –

अब समिधा हूं मैं
अर्पित कर दो मुझे
सृष्टि के हवन कुंड में
सौरभ के पंखों पर तिर कर
फैल जाऊंगी इस धरा से
उस गगन तक
संग तुम्हारे

जीवन में सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि में सामान्यतः एक चक्रीयता होती है। रात के बाद दिन आता ही है। लेकिन मनुष्य बहुधा आशावादी नहीं होता और तात्कालिक दुख को स्थायी मान लेता है। ऐसे व्यक्ति के लिए प्रकृति में व्याप्त आवर्तनशीलता किस तरह प्रेरक हो सकती है, इसे 'गुलमोहर' कविता में स्पष्ट देखा जा सकता है –

हमारा मौसम बदल गया
हम बदल गए
सारे उतार चढ़ावों को पार करके
हम फिर आ गए
तुम्हारा मौसम अभी नहीं बदला?

यह कविता अपने आप में विशिष्ट है। बकौल कवयित्री गुलमोहर का खिलना मनुष्य को अपने भावजगत को विस्तार देने और चिदाकाश में उन्मुक्त उड़ान भरने के लिए प्रेरित करता है। गुलमोहर के फूलों का झड़ना मनुष्य के अंतःकरण से अज्ञान अथवा अविद्या का झड़ना है, अंत:चक्षुओं का खुलना है जो अंततः आत्मसाक्षात्कार का माध्यम बनता है। प्रकृति से प्रेरणा और इस प्रेरणा में निहित आत्म-

परिष्कार की संभावना मीनू मदान की अनेक कविताओं का मूल भाव है। इस कविता में यह भाव अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच कर आत्म-जागरण का उपादान बन जाता है। प्रकृति की इस सकारात्मकता का एक आयाम 'ग्रीष्म' कविता में भी देखा जा सकता है, जिसमें संयोग से गुलमोहर के ही रूपक का उपयोग किया गया है। गुलमोहर के फूलों का दुशाला ओढ़ पुलकित होने वाली धरती ग्रीष्म के आने पर एक माँ की दृढ़ता एवं साहस का प्रदर्शन करती है –

धरती भी माँ है साहब !
पी लेती है सारी आग
रखती है कोख हरी
इस तपन में भी
गुलमोहर को जन्म देकर
निभा रही है धर्म अपना

'नदी से' कविता में कवयित्री नदी से पूछती है – 'आख़िर कौन सी विवशता, नियति या अभिशाप है कि तुम चट्टानें तोड़कर बहती जाती हो। अवश्य कोई अनाम पीड़ा या कोई उमंग है कि तुम आगे बढ़ती जाती हो।' अंत में वह कहती है – 'ग्लेशियर की तरह सर्द और जड़ बने रहकर कौन किसका भला कर सका है। जीवन के लिए ताप ज़रूरी है कि पोर-पोर पिघल कर बहा जा सके, आगे बढ़ा जा सके।' जीवन के ताप-संताप को ऊर्जा और प्रेरणा में बदलने वाला नदी और ग्लेशियर का यह रूपक अद्‌भुत है। अपनी जीवन स्थितियों से निराश या हताश व्यक्ति किस तरह प्रकृति से जुड़कर, कुछ पलों का सही, सुकून पा सकता है, प्रकृति के विविध रंगों से किस तरह अपने जीवन में रंग भर सकता है, 'घर लौटता सूरज और मैं' कविता इसका सुंदर उदाहरण है। ढलते हुए सूरज में कवयित्री एक ऐसे निष्ठावान प्रेमी को देखती है जो हर शाम ठीक समय पर घर लौट आता है, और अपनी प्रेयसी नदी की अकूत जलराशि में समा जाता है। वह कहती है – 'जब कुछ नहीं रहेगा तब भी यह मिलन रहेगा।' इस प्रीतिकर मिलन का दृश्य देखने हर शाम कवयित्री नदी तट पर आती है, और कुछ पल सुकून पाती है। प्रकृति के स्थूल सौंदर्य-वर्णन की अनेक कविताओं को प्रकृति के साथ सूक्ष्म एकत्व की इस एक कविता पर न्योछावर किया जा सकता है।

मीनू मदान व्यापक पर्यावरणीय चेतना की कवयित्री हैं। प्रकृति के संरक्षण का स्वर उनकी अनेक कविताओं का प्रमुख स्वर है। वे मानती हैं कि प्रकृति जन्मदात्री भले ही न हो, किसी भी प्रकार माँ से कम नही। हमारे अस्तित्व का आधार प्रकृति ही तो है। प्राणवायु, जल, भोजन और औषधि हमें प्रकृति से ही मिलते हैं। मनुष्य की आत्मा यदि ब्रह्म का अंश है तो हमारा यह भौतिक शरीर क्या प्रकृति का अंश नहीं? उन्हीं पंच महाभूतों से तो यह शरीर बना है जिनसे शेष प्रकृति का निर्माण हुआ है। संग्रह में ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें कवयित्री प्रश्न उठाती है कि आख़िर मनुष्य का प्रकृति के प्रति यह शत्रु भाव क्यों? आख़िर क्यों वह प्रकृति के विनाश पर आमादा है? ऐशो-इशरत के लिए उसके द्वारा प्रकृति का असीमित दोहन क्या उचित है? हम जानते हैं कि इन दिनों तमाम प्रकृति-प्रेमियों, पर्यावरणविदों एवं वैज्ञानिकों की सलाहों को ताक पर रख सरकारें हरे-भरे जंगल और पहाड़ के पहाड़ धनकुबेरों को बेच दे रही हैं। 'मैं पहाड़' कविता में कवयित्री ने पहाड़ की इसी वेदना को स्वर दिया है – 'मैं पहाड़, प्रियतम बादल का अनंत जलराशि का उपहार उसकी प्रियतमा धरती तक पहुँचाता हूँ। यह मध्यस्थता ही मेरा सौभाग्य है। झरनों और नदियों को मेरे सीने पर मचलने-सँवरने दो, बस्तियों को बसने दो।' कविता की अंतिम पंक्तियाँ हैं –

मत मारो मुझे बारूदों से
मुझ पर दया करो
स्थिरता का शिक्षक हूँ

मैं पहाड़

पहाड़ से शिक्षा लेने का यह रूपक अवधूत दत्तात्रेय के आख्यान में भी मिलता है, जिसमें कहा गया है कि उनके चौबीस गुरु थे, और इसमें, पेड़-पौधे, प्राणी और मनुष्य सब शामिल थे। कविता की उपरोक्त पंक्तियों पर ग़ौर किया जाए तो शायद मनुष्य जाति की अधिकांश समस्याएँ हल हो जाएँ। आज की तमाम व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याएँ मनुष्य के अस्थिर मानस की वजह से ही तो हैं। यदि मनुष्य अपनी सहज, स्वाभाविक, पूर्णतः नैसर्गिक मानवीयता में स्थिर हो जाए तो स्वत: ही अपने कार्य और व्यवहार में परस्पर सामंजस्य और पूरकता को संभव और साकार करेगा। मानवीयता में स्थिर होने का अर्थ है अपने मानव-सहज मूल स्वभाव की पहचान एवं दैनंदिन कार्य-व्यवहार में भय, प्रलोभन और आस्था के स्थान पर न्याय, धर्म और सत्य के आधार पर निर्णय लेना। ऐसा कोई भी निर्णय व्यापक मानव सभ्यता और समाज के हित में ही होगा। 'सहमा जंगल' कविता भी जंगल की पीड़ा, या कहें रुदन को अभिव्यक्त करती है। हर सुबह जंगल सहमा हुआ रहता है, कि आज फिर सरकार के काँधे पर चढ़कर कोई धनकुबेर आएगा और अपने कारखानों के लिए उसके लाखों शिशुओं यानी वृक्षों की हत्या करेगा। साथ में अप्रत्यक्ष रूप से लाखों जीव भी मारे जाएँगे। प्रकृति के प्रति मनुष्य की असंवेदनशीलता एवं कृतघ्नता की ओर ध्यानाकर्षण एवं उसके प्रति कृतज्ञता एवं उसके संरक्षण की अनिवार्यता का प्रतिबिंबन संग्रह की अनेक कविताओं में मिलता है।

मीनू मदान की कविता में स्त्री विमर्श का स्वर भी अत्यंत प्रखर है। उनकी कविता में स्त्री अपने संपूर्ण अस्तित्वगत सौष्ठव, आत्म-गौरव और गरिमा के साथ प्रस्तुत होती है। वह परमुखापेक्षी और कमज़ोर नहीं बल्कि आत्मविश्वास से भरपूर स्त्री है। यह स्त्री ठीक उसी तरह पृथ्वी पर मनुष्य के अस्तित्व का आधार है जिस तरह सांख्य दर्शन में 'प्रकृति' तत्त्व भौतिक सृष्टि का आधार है। अंतर मात्र यह है कि सांख्य में 'प्रकृति' अपनी अस्मिता के साथ स्वतंत्र है, जबकि मानव जगत में स्त्री पुरुष सत्ता के अधीन है। सांख्य में 'प्रकृति' का लक्ष्य परम चेतना स्वरूप 'पुरुष' के साथ एकाकार होना है, जिसमें उसकी मुक्ति या मोक्ष है। स्त्री का लक्ष्य पुरुष की अधीनता से मुक्त हो अपनी अस्मिता की पहचान है। सांख्य का 'पुरुष' सूक्ष्म एवं निरपेक्ष चेतन तत्त्व है जबकि मनुष्य रूप में पुरुष एक साधारण मर्त्य है जिसमें स्त्री के संदर्भ में बहुधा सामान्य मानवीय चेतना भी नहीं देखी जाती। उसकी चेतना अक्सर एक मर्द की चेतना है, जो स्त्री के बंधन का कारण है। इस बंधन से मुक्ति की आकांक्षी मीनू मदान की स्त्री निर्भीक विद्रोहिणी है, और लक्ष्य प्राप्ति के लिए किसी भी सीमा तक संघर्ष के लिए सन्नद्ध है। 'मंगलसूत्र' कविता में कवयित्री एक स्त्री को पुरुष की गुलामी से आज़ाद कराना चाहती है, उसे उजालों से मिलाना चाहती है, उसकी बरसों की सीलन को सूरज की धूप दिखाना चाहती है, लेकिन हैरान होती है यह देखकर कि स्त्री के गले का मंगलसूत्र किसी कुत्ते के गले के पट्टे या किसी गाय के गले की रस्सी, जिससे वह खूँटे से बंधी होती है, से भी ज्यादा मज़बूत साबित होता है –

उफ़ ! उसके पति ने
बड़ी मज़बूती से उसके गले में
डाला हुआ था मंगलसूत्र

इस कविता में कवयित्री अप्रत्यक्षत: किंतु पूरी स्पष्टता के साथ इस बात को रखती है कि स्त्री की जेंडर आधारित समस्याएँ समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरुष के वर्चस्ववादी स्वभाव की वजह से तो हैं ही, लेकिन इसके लिए स्त्री की जड़ता एवं अनावश्यक एवं अतार्किक समर्पण भी कम ज़िम्मेदार नहीं। वह स्त्री जाति से आह्वान करती है कि उसे किसी त्राता की प्रतीक्षा न कर स्वयं ही अपनी बेड़ियाँ तोड़नी होंगी। हम जानते हैं कि बचपन से ही परिवार एवं समाज द्वारा स्त्री की इस तरह से कंडीशनिंग कर दी जाती है कि वह स्वाभाविक रूप से पुरुष की तुलना में न सिर्फ़ स्वयं को दोयम समझने लगती है, बल्कि उसे इस गुलामी की आदत भी हो जाती है। सैमुअल जॉनसन के शब्दों में कहें

तो "आदत की ज़ंजीरें इतनी हल्की होती हैं कि महसूस ही नहीं होतीं, जब तक कि वे इतनी भारी न हो जाएँ कि तोड़ी न जा सकें।" इस कविता में आदत की इन्हीं ज़ंजीरों की बात हो रही है, और कि मंगलसूत्र को आभूषण मात्र समझा जाए, गले की ज़ंजीर नहीं। प्रसंगवश एक रोचक और विचारणीय बात कि वह कुत्ते के गले में हो या स्त्री के, अंग्रेज़ी में उसे 'चेन' ही कहा जाता है। लेकिन हमारी परम्परा में एक पवित्र एवं महिमापूर्ण शब्द गढ़ा गया है – 'मंगलसूत्र'। इस शब्द के निहितार्थ से अनजान एक नवविवाहिता जिस गर्व और आनंद के साथ उसे धारण करती है, यह हम जानते हैं। एक और बात कि विवाह यदि स्त्री के लिए मंगलकारी है तो पुरुष के लिए भी मंगलकारी होगा ही। लेकिन उसके लिए ऐसे किसी सूत्र या चिह्न का विधान नहीं। प्रकारांतर से कवयित्री ने परम्परा में विद्यमान, हमारे सामाजिक आचरण का नियमन करने वाली उन सभी भव्य-दिव्य संहिताओं को प्रश्नांकित किया है जो आज के समय में प्रासंगिक नहीं हैं।

एक कवि के रूप में मीनू मदान की दृष्टि जितनी व्यापक है उतनी ही गहन भी है। अपने आसपास का जड़-जंगम संसार हो या मनुष्य का मन, दोनों ही में वे गहरे उतरती हैं, और कोई नई बात खोज लाती हैं। उनकी कविताएँ एक कुशल मनोवैज्ञानिक की तरह मानव-मन की थाह लेती हैं। 'स्त्रियाँ' ऐसी ही एक कविता है जो सिगमंड फ्रायड की याद दिलाती है। फ्रायड की मान्यता थी कि मनुष्य के कार्य-व्यवहार में अवचेतन में स्थित दमित यौन इच्छाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस कविता में वे कहती हैं कि इस दमन से उपजी कुंठा की वजह से ही स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक धार्मिक होती हैं और धार्मिक कार्यक्रमों में अधिक नाचती-गाती हैं –

रिसने लगता है दबी वासना का प्रवाह
झूम-झूम कर, नाच-नाच गाती हैं
मनाती हैं अपने भीतर छिपे अनाम प्रियतम को
उसके प्रेम में डूब कर तृप्त हो जाती हैं
धार्मिक कहलाती हैं

विचारहीनता के इस भयावह दौर में, जबकि पाखंड एक जीवन-मूल्य बन चुका है, इस तरह की कबीराना कविता लिखना साहस का काम है। यह धर्मसत्ता ही नहीं बल्कि धर्म के नाम पर राजनीति करने वाली राज्यसत्ता को भी चुनौती देने जैसा है। इतिहास देखें तो कबीर को तो धर्मसत्ता द्वारा बख़्श दिया गया था, लेकिन सुकरात, मंसूर और ब्रूनो आदि का क्या हश्र हुआ था, हम जानते हैं। इसी कविता में आगे कवयित्री अपनी 'अतृप्त भूख-प्यास', जो यहाँ स्पष्टतः यौन-अतृप्ति ही है, के लिए एक बार फ़िर स्त्री को ही ज़िम्मेदार ठहराती है, जिसने परम्परा में झुकना-दबना स्वीकार किया। कबीराना मिज़ाज की एक और कविता 'मैं वेश्या' में कवयित्री ने एक वेश्या के आत्मसंघर्ष, कुंठा एवं अंतहीन पीड़ा को सशक्त स्वर दिया है। यह कविता शिल्प, बिंब एवं शब्द चयन में अद्‌भुत है। स्त्री के पेट की और पुरुष की सेक्स की भूख का अद्‌भुत रूपक तो कवयित्री ने रचा ही है, उसे नवरात्र के कन्या-पूजन से जोड़कर धार्मिकता का दिखावा करने वाले समाज के दोगलेपन की भी खबर ली है –

सुनो !
तुम पूजते रहे नवरात्रों में कन्या
मेरी भी पूजा करो
तुम्हारी ही पैदाइश हूं
मैं वेश्या

पुरुष की जन्मदात्री एवं पोषक होने का हवाला देते हुए 'मरेगी नहीं स्त्री' कविता में मीनू मदान की स्त्री अपने पूरे वजूद के साथ उठ खड़ी होती है। वह चुनौती देती है – 'जिस दिन खींच लेगी अपनी

ज़मीन, तुम कहाँ रखोगे पाँव।' 'मिट्टी से मिट्टी तक' कविता में तो स्त्री का अस्मिता बोध नई ऊँचाईयाँ छूता है। जीते-जी स्त्री सजावट की वस्तु नहीं बनना चाहती। इस संघर्ष में बहुत ज़ख्म भी खाती है। लेकिन वह जीवन के इस सत्य को भी जानती है कि मिट्टी से ही प्राण हैं और मिट्टी में ही त्राण है। मिट्टी का शरणागत होने का अर्थ यहाँ अपने मूल स्वभाव, स्वरूप एवं अस्मिता की पहचान एवं रक्षा से है। इस कविता में स्त्री का आत्म-सम्मान, संकल्प एवं दृढ़ निश्चय अपने चरम पर दिखाई देता है। मिट्टी बन जाने पर भी उपयोग करने वाले को उसकी मिट्टी का मोल चुकाना ही होगा। ये पंक्तियाँ इस सत्य को भी सामने रखती हैं कि मनुष्य अन्य मनुष्यों के गुण, स्वभाव, चरित्र एवं स्वयं के प्रति उनकी सदाशयता के बावजूद मानवीय संबंधों का मूल्य और महत्ता नहीं समझता, लेकिन निर्जीव वस्तुओं का मोल चुकाने के लिए सदा तैयार रहता है। यह कविता इस संग्रह की बेहतरीन कविताओं में से एक है –

अब आएगा कोई चतुर कुम्हार
रोंदेगा मुझे
गढ़ेगा मुझे
देगा मनचाहा आकार
तब मेरा मोल चुका कर तुम
सजा लेना मुझे
अपने ड्राइंग रूम में

'स्त्री कहाँ है' कविता अद्‌भुत है। एक पौराणिक आख्यान पर आधारित इस कविता में स्त्री न सिर्फ़ पुरुष के छल और शाप से मुक्त होना चाहती है बल्कि तारक स्पर्श भी उसे नहीं चाहिए, क्योंकि इस कहानी में हर जगह पुरुष है, स्त्री कहीं नहीं है। जी हाँ, यहाँ अहिल्या की बात हो रही है जिसे इंद्र ने छला, गौतम ने शाप दिया और राम ने अपने स्पर्श से शाप-मुक्त किया। हम सुनते आए हैं कि स्त्री और पुरुष का मिलन नदी के सागर में मिल जाने जैसा है। 'सुनो तुम नदी से' कविता में कवयित्री कहती है कि सागर से मिलने के लिए आतुर नदी हजारों मील की यात्रा कर उस तक पहुँचती है, और बदले में क्या पाती है – अपना अस्तित्व खो बैठती है। यह कविता पाठक के मन में एक प्रश्न छोड़ जाती है कि क्या यह वैसा ही नहीं है जैसे पितृसत्तात्मक समाज में विवाह के बाद कई बार स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। 'स्त्री नदी नहीं है' कविता में नदी और सागर के रूपक को कवयित्री एक अन्य कोण से देखती है। इस कविता में विद्रोही कवयित्री ऐसे पुरुष को सागर मानने से ही इंकार कर देती है जिसे मात्र स्त्री के शरीर की लिप्सा है, 'जो स्त्री की सुगंध नहीं महसूसता, जो स्त्री की तरंग में तरंगित नहीं होता, स्त्री की आग में जल नहीं जाता।' कविता की पंक्तियाँ देखें –

हाँ ! स्त्री नदी नहीं है
कि सागर में मिल जाए
सागर में मिलना
स्वयं को गंदला
और खारा बना देना है

इस कविता में स्त्री सागर से मिलने से मना अवश्य करती है लेकिन 'मैं सिर्फ़ जिस्म हूँ' कविता में मिलन की इस प्यास को संजोकर भी रखना चाहती है। इस उम्मीद के साथ कि एक न एक दिन आत्मिक मिलन अवश्य होगा और यह चिरंतन प्यास अवश्य मिटेगी। यह कविता स्त्री-पुरुष संबंधों के एक अलग ही पक्ष को उद्‌घाटित करती है। कवयित्री इस बात को पूरी बेबाकी से रखती है कि पुरुष के लिए स्त्री का शरीर एक स्वादिष्ट व्यंजन से अधिक नहीं जिसकी तलब तात्कालिक होती है और तलब मिट जाने पर जिसकी ज़रूरत नहीं रह जाती। इसके बरअक्स औरत को रूह के सुकून की ज़रूरत है, जो पुरुष दे नहीं सकता। फिर भी स्त्री को संतोष है कि वह इस रिश्ते से ख़ाली हाथ नहीं लौटेगी।

अजर, अमर, चिरंतन भूख की पूँजी उसके साथ होगी। कुल मिलाकर कथ्य यह है कि स्त्री के आत्मिक सुख की भूख आदिकाल से अब तक उपेक्षित है लेकिन उसे विश्वास है कि जन्म-जन्मांतर के बाद सही, एक दिन यह भूख अवश्य मिटेगी –

मैं जानती हूँ
खाली हाथ लौटूँगी इस सफ़र से
किंतु तन्हा नहीं हूँ मैं
साथ में है मेरी भूख
अमर अजर चिरंतन

स्पष्ट है कि मीनू मदान की स्त्री एक व्यक्ति-विशेष नहीं, बल्कि पृथ्वी के भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी स्त्रियों को समाहित करने वाला स्त्री-तत्त्व है। यह स्त्री का असीम उदात्तीकरण है, सृष्टि के एक अपरिहार्य अंग के रूप में उसकी प्रतिष्ठा है। कवयित्री का लक्ष्य पुरुष सत्ता के समानांतर कोई सत्ता खड़ी करना नहीं बल्कि बराबरी के आधार पर स्त्री और पुरुष की मानवीय चेतनाओं का एकत्व है, जिसे आत्मिक एकत्व भी कहा जा सकता है। 'सदैव' कविता में वे कहती भी हैं कि मिलन के बाद प्रेमी एक दूसरे के भीतर सदैव जीवित रहते हैं। इस कविता में जो उन्होंने नहीं लिखा उसे समझा जा सकता है कि विछोह या अलगाव के बाद भी यही स्थिति रहती है। विछोह तो खैर दैव-निर्धारित है लेकिन सुविचारित अलगाव से पहले एक-दूसरे का न्यायपूर्ण मूल्यांकन आवश्यक है। यह भी आत्मिक एकत्व की ही बात है जो कई बार परिस्थितियों की वजह से नेपथ्य में चली जाती है। 'फिर से' कविता में भी पुनर्मिलन की कामना है। गहन प्रेम की कविताओं में 'ख़ाली कमरा' भी एक है जिसमें 'असीम ख़ालीपन अपने प्राणों में भरकर स्त्री अपने अँधेरों में चुपचाप लौट आती है।' अब यह विछोह है या अलगाव इसका पाठक ही अंदाज़ा लगाए, लेकिन कविता में भावों की तीव्रता ग़ज़ब है।

स्त्री-मुक्ति का कवयित्री का संघर्ष प्रेम के धरातल पर है। प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए है। प्रेम जो मानवीय चेतना का मूल तत्त्व है। प्रेम जो जीवन का आधार है। प्रेम जो साध्य भी है और साधन भी। इस प्रकार मीनू मदान मूल रूप से प्रेम की चितेरी हैं। उनकी कविता प्रेम की कविता है। कभी यह प्रेम प्रकृति के प्रति होता है, कभी मनुष्य मात्र के प्रति, और कभी एक प्रेमिका के रूप में प्रेमी पुरुष के प्रति। लेकिन एक बात निश्चित है, कि अपने हर रूप में यह प्रेम निरपेक्ष है। इसमें किसी प्रतिदान की आशा या आकांक्षा नहीं। इस उदात्त प्रेम के दायरे में सृष्टि की हर इकाई यानी जीव-अजीव, जड़-जंगम, मनुष्य सभी शामिल हैं। 'प्रेम बचाओ रे' कविता में वे कहती भी हैं –

प्रेम प्रतिदान में कुछ नहीं चाहता
वह बहता है
नदी के उद्दाम प्रवाह की तरह
निर्द्वंद्व, निर्लिप्त, निःस्वार्थ

मीनू मदान की क़लम से जीवन का अमूमन कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं बचा है। मनुष्य एवं प्रकृति की पीड़ा के साथ ही उन्होंने इस पीड़ा के प्रमुख कारकों समाज और राजनीति पर भी अपनी नश्तर सी कलम चलाई है। समाज को आईने में अपना चेहरा दिखाती 'जंगल' कविता अद्‌भुत है। इस कविता में वे कहती हैं – 'समाज के जंगल में समानता, सहयोग या महानता जैसी कोई चीज़ नहीं। वह अंदर से बिल्कुल नग्न है और उसने सभ्यता और शालीनता की बस चादर ओढ़ रखी है। अपने मुहाने पर रखे आईने में समाज देख सकता है कि किस तरह आज भी अपनी पूरी ताक़त के साथ जंगल उसके भीतर ज़िन्दा है।' 'आसमान' कविता में वे कहती हैं – 'आसमानी उड़ान के लिए ज़मीन छोड़ देने पर भी मनुष्य जब गिरता है तो ज़मीन लपक कर सम्हाल लेती है। मनुष्य गिरता इसलिए है कि

आसमान में बदचलन हवाओं का कानून चलता है। इन हवाओं के तीव्र झोंके मनुष्य के संचित ईमान को नोंच लेते हैं। इसी से आसमान का अस्तित्व बना रहता है।' यहाँ 'संचित ईमान' शब्द युग्म भारतीय दर्शनों के 'संचित कर्म' शब्द युग्म के समानांतर है जो कि एक नया प्रयोग है।

मीनू मदान विद्रोह को एक आवश्यक जीवन मूल्य मानती हैं। 'बग़ावत' कविता में जब वे कहती हैं कि 'बहुत ज़रूरी है भीड़ से बाग़ी होना' तो भीड़ से उनका मतलब भेड़चाल से है। यह बग़ावत परिवार में भी हो सकती है और समाज या संस्थाओं में भी। जीवन और प्रकृति के हर पहलू में वे बग़ावत को ही नवोन्मेष एवं नवनिर्माण का कारक मानती है। उनकी दृष्टि में 'बग़ावत ज़िंदा होने की निशानी है और अँधेरे की कोख से सूरज का निकलना और धरती की छाती फाड़कर अंकुर का उग आना भी बग़ावत ही है।' ऐसे बाग़ी तेवरों वाली कवयित्री वर्तमान राजनीति पर मौन रहे यह संभव नहीं है। विशेष रूप से तब जब दुनिया भर के लोकतांत्रिक देशों में दक्षिणपंथ के उभार के साथ ही एक नई तरह की तानाशाही जन्म ले रही है। भारत में इसकी रफ़्तार कुछ ज़्यादा ही है। संग्रह की 'आज भी है' कविता ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को देखती है। विश्व भर में राज्य-व्यवस्था का इतिहास देखें तो अधिकतर राजतंत्र ही हावी रहा है। यद्यपि श्रमण संस्कृति के उदय काल के दौरान उत्तर-पूर्वी भारत में शाक्य, मल्ल, विदेह आदि गणसंघ रहे हैं, और प्राचीन रोम में भी ऑगस्टस के पूर्व काल में गणराज्य अस्तित्व में रहा है, किंतु ये एक तरह से कुलीन तंत्र ही थे। इसके करीब अठारह सौ वर्षों के बाद औद्योगिक क्रांति के लगभग साथ-साथ लोकतंत्र का विकास हुआ और आज विश्व के अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था ही है। लेकिन मीनू मदान को इन तथाकथित लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं से बहुत उम्मीद नहीं है। लोकतंत्र में व्याप्त ख़ामियों पर उनकी पैनी नज़र है। 'आज भी है' कविता की पंक्तियाँ देखें

अपने साम्राज्य की
शानो-शौकत के झूठे दंभ से
कब मुक्त हो सके हो तुम
ओ दरबारी सभ्यताओं के
खोखले वंशज !
आज भी हरम में बंदी हैं
तुम्हारी असंख्य रखैलों की चीखें

पिछले एक दशक में देश की राजनीति उत्तरोत्तर मूल्यहीन, दिशाहीन और अराजक होती गई है। यदि राजनीति को शब्द, लेखनी और लेखक से चिढ़ हो, और यह चिढ़ इस हद तक हो कि दाभोलकर, पानसरे, कलबुर्गी और गौरी लंकेश जैसे तर्कवादियों और अभिव्यक्ति की आज़ादी के पैरोकारों को अपनी जान तक गँवानी पड़े तो समाज और देश के भविष्य पर निश्चित ही यह एक प्रश्नचिह्न है। 'कवि, क़लम और क़त्ल' कविता में कवि द्वारा ग़लत की तरफ़ उँगली उठाए जाने पर उसकी उँगली काट दी जाती है। अपने आस-पास का दर्द लिखने पर उसकी क़लम तोड़ दी जाती है। सामाजिक जीवन में आम हो रही हिंसा पर लिखने पर उसके प्राण ले लिए जाते हैं। इस कविता में मीनू मदान ने कवि, क़लम और क़त्ल के माध्यम से अभिव्यक्ति का दमन करने वाली आज की कुत्सित राजनीति और निरंतर कुंद होती जा रही जनचेतना के विद्रूप का अद्भुत रूपक रचा है। पोस्ट-ट्रुथ के इस समय में हर तरफ़ झूठ का बोलबाला है। तकनीक का उपयोग कर योजनाबद्ध और संगठित तरीक़े से हर प्रकार के सत्य को छिपाने के जतन ख़ुद सरकार द्वारा किए जाते हैं। टीवी पर समाचारों के नाम पर चौबीस घंटे सरकार समर्थक नैरेटिव चलाए जाते हैं। जब बड़े-बड़ों के लिए सच बोलना विनाश को आमंत्रण देने जैसा है, तो आम आदमी की क्या बिसात। इस परिस्थिति पर 'सत्य की खोज' कविता में मीनू मदान कहती हैं –

सत्य सत्ता की उँगली का छल्ला है
सत्य सीने में बंद आग का हल्ला है

मीनू मदान ने जहाँ सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार के विरोध में अपना स्वर बुलंद किया है वहीं श्रेष्ठी वर्ग द्वारा सामान्य जन के शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठाई है। एक ओर लोकतंत्र के नाम पर जनप्रतिनिधियों का राजसी वैभव-विलास और दूसरी और जीवन के लिए आवश्यक मूलभूत संसाधनों से वंचित साधारणजन। वंचना इस हद तक कि पेट को रोटी, तन को कपड़ा और सर को छत तक नहीं। तिस पर मौसमों की मार। यहाँ चुनौती जीने की नहीं, जान बचाने की है। ऐसी दारूण जीवन स्थितियों का चित्रण एक संवेदनशील कवि के लिए हमेशा चुनौतीपूर्ण होता है, क्योंकि अक्सर वह कवि का भोगा हुआ यथार्थ नहीं होता। कविता में कृत्रिमता झलकने की संभावना रहती है। लेकिन मीनू मदान की ऐसी कविताएँ अत्यंत मार्मिक ही नहीं जेनुइन भी हैं। वे मात्र सहानुभूति नहीं बल्कि गहन समानुभूति के क्षणों में लिखी जान पड़ती हैं। कुछ न कर पाने का असहायता बोध भी पंक्तियों के बीच पढ़ा जा सकता है। 'घाटी में' कविता की पंक्तियाँ देखें –

पिछले दिनों से
सूरज की अँगीठी में
ख़त्म हो चुका है बालन
और दूर तलहटी में बने
उसके घर के चौके में भी
बर्फ़ के तूफ़ानी झोंकों ने
उड़ा दी है उसके घर की छत

घाटी के बर्फ़ीले मौसम को दर्शाने के लिए कवयित्री एक और जहाँ सूरज की अँगीठी में बालन के ख़त्म हो जाने का रूपक रचती है वहीं दूसरी ओर चौके में बालन का ख़त्म होना अभाव की पराकाष्ठा को दर्शाता है। यह कविता जितनी मार्मिक है उतना ही चमत्कृत भी करती है। '6 मई, 2023 मणिपुर' कविता में महिला को निर्वस्त्र कर घुमाए जाने की विचलित कर देने वाली घटना पर कवयित्री पूरी जुगुप्सा के साथ तीव्र प्रतिरोध दर्ज करती है और महाभारत के चीरहरण के प्रसंग की याद दिलाते हुए पूरे पुरुष समाज को इस कुत्सित कार्य के लिए फटकारती है –

देखो आज
ध्यान से देख लो
तुम ही हो आज भी
कोशिश की थी निर्वस्त्र करने की
पांचाली को भरी सभा में
कल भी तुम ही थे

जिस तरह पीड़ा सार्वभौमिक होती है उसी तरह मनुष्य की संवेदना भी सार्वभौमिक होती है। अमेरिका के एक अश्वेत जॉर्ज फ्लॉयड की एक पुलिसकर्मी द्वारा अपने बूटों से गला दबाकर की गई हत्या कवयित्री को कितनी गहराई तक संवेदित करती है, 'आई कांट ब्रीद' कविता की इन पंक्तियों में देखें –

भस्म कर दो आज उन जंगलों को
जिनके घुप्प अँधेरे में
मानवता दम तोड़ती है

और चीख-चीख कर कहती है
आई कांट ब्रीद

संग्रह में कोरोना काल की भी कुछ कविताएँ हैं। इन कविताओं में लॉकडाउन के सन्नाटे से लेकर सड़कों पर हज़ारों मील के पैदल सफ़र पर निकले मजदूरों के जीवंत शब्द-चित्र हैं। संवेदनशील कवयित्री को 'बाहर निकल पड़े शब्द' कविता में अपने शहर की कर्फ़्यू जैसी स्थिति देखकर कश्मीर याद आता है – 'आज पूरा भारत कश्मीर है।' हम जानते हैं कि कोरोना काल में सरकारी स्तर पर तमाम तरह की बहसें गर्म थीं लेकिन भुक्तभोगियों को राहत पहुँचाने के नाम पर कुछ ख़ास नहीं हो रहा था। 'क्या जवाब दोगे' कविता में कवयित्री झिड़कते हुए कहती है – 'युग पर मँडराते तमाशबीन शब्दो, उतरो नीचे, ज़मीन पर आओ।' 'फिर से एक बार' कविता में कोरोना के कठिन काल के बीच कवयित्री का आशावाद देखें कि किस तरह वह कोमल-कांत शब्दों में पृथ्वी पर जीवन के लौट आने की उम्मीद करती है –

रजनीगंधा से लेकर सुगंध
महकाऊंगी पोर-पोर
बिखर जाऊँगी एक भोर
बजेंगे हवाओं के घुँघरू
चारों ओर

कवि स्वभाव से ही मुक्तिकामी होता है। कविता ही क्यों, किसी भी प्रकार की कला, यद्यपि शास्त्रों में कविता को कला नहीं विद्या माना गया है, मनुष्य की मुक्ति के लिए ही है। अभिव्यक्ति ही मुक्ति है, चाहे वह किसी भी रूप में हो। मनुष्य को नैसर्गिक रूप से प्राप्त कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतन्त्रता भाव, स्वर, विचार और कर्म को नित नए रूपाकार देती है। इसी से सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है। यह विकास ही वास्तव में मुक्ति है। इस तरह मुक्ति कोई घटना नहीं बल्कि सभ्यता और संस्कृति के विकास का क्रम है। कवयित्री का प्रश्न है कि सहस्रों वर्षों की विकास यात्रा के बावजूद अन्य जीवों की बनिस्बत एक विशिष्ट चेतना से विभूषित मानव की मुक्ति अभी शेष क्यों है। क्यों वह मन की नकारात्मक वृत्तियों का बंदी है। क्यों वह विचार से स्वार्थी और व्यवहार से हिंसक है। 'ओ मुक्तिबोध' कविता में मीनू मदान इसी यक्ष प्रश्न को उठाती हैं। उनका संघर्ष व्यक्ति की मुक्ति तक सीमित न होकर सभ्यता की मुक्ति के लिए है। लेकिन सभ्यता की इस मुक्ति के लिए प्रत्येक मनुष्य को मुक्ति-कामी होना होगा, अपने अंतस में प्रसुप्त मुक्ति के बोध को जागृत करना होगा। जागृति का यही आह्वान कवयित्री इस कविता में करती है –

ओ मुक्तिबोध !
देख लो एक बार
मेरी आत्मा से लिपटे ये विषधर
कितनी बार डसा है विषदंतों ने
कितनी बार रश्मि-पुंज पर
झपटा है अंधेरों का बाज

संग्रह में कुछ प्रेम कविताएँ भी हैं, लेकिन ये ऐंद्रिक प्रेम की सपाट कविताएँ नहीं हैं। यह सहज, नैसर्गिक और निरपेक्ष प्रेम है। इन कविताओं में जहाँ एक ओर प्रेम की गहनता है वहीं दूसरी ओर प्रकृति-प्रेरित बिंब-विधान उन्हें एक अलग ही रंग में रंगता है। भाव-सघन ये कविताएँ अस्तित्व के प्रति गहन रहस्यानुभूति से भी अनुप्राणित हैं। इन कविताओं में एक अनाम अनागत की प्रतीक्षा है, मिलन की व्याकुलता है और पूर्णता की उत्कट आकांक्षा एवं आशा है। 'प्रियतम' कविता में कवयित्री आह्वान

करती है – 'ओ प्राण ! तुम ही सत्य हो, तुम ही सुंदर हो, तुम ही शिव हो मेरे।' 'पहाड़ की चोटी पर' कविता की पंक्तियाँ देखें –

बादलों के उड़न खटोले में
हम तुम सैर करेंगे
कि वहाँ चाँद
हमारी मेहमान-नवाज़ी करेगा
कि वहाँ से ईश्वर के घर
आया जाया करेंगे

मीनू मदान के पास अपनी एक विश्वदृष्टि है। इस विराट अस्तित्व में वे एक व्यापक सहअस्तित्व देखती हैं। वे मानती हैं कि सहअस्तित्व के बिना सृष्टि के विभिन्न अंगों का अस्तित्व संभव नहीं। दूसरे शब्दों में कहें तो परस्पर पूरक सहअस्तित्व ही अस्तित्व का आधार है। इस सत्य को समझना किसी के लिए मुश्किल नहीं। मुश्किल यह है कि लोग ध्यान देना और समझना नहीं चाहते। पृथ्वी पर सबसे पहले पदार्थ था – मिट्टी, पत्थर, खनिज आदि। फिर वनस्पतियाँ आईं, जिन्होंने मिट्टी से पोषण लिया। फिर जीव-जंतु आए जिन्होंने वनस्पतियों से पोषण लिया। पदार्थ, वनस्पति और जीव, सृष्टि के इन तीनों अंगों का आपस में कोई संघर्ष नहीं। ये परस्पर पूर्णतः सहअस्तित्व में हैं। अंत में मनुष्य का आविर्भाव हुआ, जिसका जीवन पूर्व के तीनों अंगों पर आधारित है, और जिसे ईश्वर ने एक विशिष्ट चेतना से भी विभूषित किया है। पृथ्वी पर विद्यमान प्रकृति के इन सभी अंगों के बीच सहअस्तित्व बनाए रखना मनुष्य का ही उत्तरदायित्व है। इसके बावजूद मनुष्य ने सारे संसार में अशांति, असंतुलन और अव्यवस्था फैला रखी है। प्रकृति के साथ ही नहीं बल्कि वह आपस में भी जाति, वर्ग, नस्ल, लिंग आदि के नाम पर परस्पर संघर्ष में लिप्त है। अपनी कविताओं में मीनू मदान मनुष्य से इसी सहअस्तित्व को बनाए रखने का आह्वान करती हैं। उनकी कविताएँ इसी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित हैं। शायद इसलिए उनकी कविताओं में कई बार आध्यात्मिकता का पुट दिखाई देता है। संग्रह का समापन 'तुम आओगे' कविता से ठीक ही किया गया है। यह कविता, संग्रह की कविताओं के कथ्य और भावों की तार्किक परिणति है–

जब छँट जाएँगे घृणा के बादल
जब निकलेगा मोहब्बत का सूरज
और अहम् की हिमचोटियों को
चूमकर पिघला देगा

जब जल जाएँगे
ख़ुदग़र्ज़ी के झाड़-झंखाड़
और जंगल सुकून से सो पाएँगे

जब उन्मादी सागर से उठेगा
अनहद नाद कोई
और लहरें करुणा के गीत गाएँगी

सारे तर्क, चालाकियाँ, प्रतियोगिताएँ
जब हो जाएँगी मौन

उस दिन सुनोगे गूँज मेरी

और आओगे वहाँ
मैं थी, हूँ और रहूँगी जहाँ
सर्वदा

जहाँ तक संरचना का प्रश्न है, मीनू मदान की कविता में सपाटबयानी नहीं है। अनावश्यक वर्णनात्मकता नहीं है। कम शब्दों में बहुत कुछ कह देने का हुनर उन्हें आता है। समुचित एवं अर्थगर्भित बिम्ब-विधान इसे संभव बनाता है। रूपक अद्भुत हैं, अक्सर चमत्कृत करने वाले भी। भाषा सुंदर, सरस और ललित है और उसमें सहज प्रवाह है। शुष्क और अख़बारी भाषा में लिखी जाने वाली कविताओं के इस दौर में ये कविताएँ पाठक को निश्चित ही एक अलग अनुभव प्रदान करती हैं। प्रेक्षण क्षमता एवं शाब्दिक निरूपण का कौशल जीवन की जटिल से जटिल स्थितियों एवं छवियों की अभिव्यक्ति में कवयित्री को सक्षम बनाता है। कविताएँ प्रखर प्रगतिशील वैचारिकी से युक्त हैं एवं पाठक को ठहरकर सोचने के लिए विवश करती हैं। कुल मिलाकर 'अरे ओ वसंत' की कविताएँ मीनू मदान को प्रकृति, पर्यावरण, स्त्री एवं सामान्य जन का अनूठा कवि साबित करती हैं।

बोधि प्रकाशन ने उत्कृष्ट गुणवत्ता के साथ पुस्तक को प्रकाशित किया है। आवरण चित्र जिसकी लेख के प्रारंभ में चर्चा की गई है कवयित्री के पुत्र शाश्वत मदान का है। पुस्तक अमेज़न पर उपलब्ध है।

लेखक परिचय:

मीनू मदान

जन्म: 21 अप्रैल 1975, अलवर, राजस्थान। मुंबई विश्वविद्यालय में हिंदी की प्राध्यापक। एक कविता संग्रह प्रकाशित। अनेक साहित्यिक पुरस्कारों और सम्मानों से विभूषित। दूरदर्शन सहित अनेक टीवी चैनलों पर कविता पाठ। संगीत में भी गहरी रुचि। वृक्षारोपण एवं प्रकृति संरक्षण हेतु सक्रिय।

प्रशांत जैन

जन्म: 18 सितंबर 1968, मुलताई, मध्यप्रदेश। मुंबई विश्वविद्यालय से मेकेनिकल इंजीनियरिंग में पीएच डी। । भारत सरकार, द्वारा प्रमाणीकृत एनर्जी ऑडिटर। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, ग़ज़लें एवं समीक्षाएँ प्रकाशित। एक प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग कॉलेज में अध्यापन।